पर्यावरण संरक्षण में सहायक विविध तत्वों का मूल्यांकन

डॉ0 वीरेन्द सिंह यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ

आस्थायों को उपभोक्तावाद में बदलकर हम गंगा का मूल्य आंकने लगे, भटकती हुई इस दुनियाँ के साथ–साथ हमने भी मोक्ष के अर्थ को बदल डाला। मोक्ष अब गंगा स्नान से नहीं बल्कि गंगा जल से निर्मित बिजली से प्राप्त करना हमारा ध्येय बन चुका है।नई सहस्त्राब्दी की दहलीज पर अग्रसर दुनियाँ में आशंका व्यक्त की जाने लगी है कि गंगा कहीं लुप्त होने तो नहीं होती जा रही। विश्व प्रकृति निधि द्वारा अपने एक शोध अध्ययन में बताया गया है कि गंगा के बढ़ते प्रदूषण, वनों के कटने और हिमनदों के पिघलने के कारण गंगा सन् 2035 तक लुप्त हो जायेगी। विशाल क्षेत्र में बहने वाली गंगा दिन–प्रतिदिन सिमट रही है, अतिक्रमण का शिकार बनाई जा रही है।

आजादी के सात से अधिक दशक व्यतीत हो जाने के बाद 04 नवम्बर 2008 को गंगा राष्ट्रीय नदी घोषित कर दी गई। दूरदर्शन और समाचार पत्रों के माध्यम से भारत के कौने–कौने तक पहुंचा प्रधानमंत्री जी का यह संदेश शायद गंगा तटों पर अभी नही पहुंचा। क्योंकि गंगा की बदहाली बढ़ रही है, प्रदूषण और अतिक्रमण बढ़ रहा है; वहीं गंगा जल की मात्रा और लोगो की आस्थायें घट रही हैं और गंगा पर राजनीति/उपभोक्तावाद दोनो ही दिन प्रतिदिन हावी होते जा रहे हैं। यदि हम ठण्डे मन से विचार करें– तो मोक्षदायिनी और जीवन दायिनी गंगा भारत के करोड़ों – करोड़ लोगों के लिए मात्र आस्था की एक पवित्र नदी ही नहीं, यह इस देश की सभ्यता संस्कृति, समृद्धि और इतिहास की एक प्रमुख धारा रही है। गंगा के तटों पर अनेक धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पुर्नत्थान के केन्द्र जन्में, फले–फूले और समृद्ध हुए हैं। आज वही गंगा प्रदूषित होकर बदहाल है आमिशप्त है। सभी को निर्विशेषः भाव से तारने वाली गंगा आज अपने ही लिए तारनहार तलाश रही है। आज से 24 साल पहले गंगा ने एक ऐसा ही सपना देखा था। इस देश के पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री राजीव गाँधी गंगा के तारनहार बनकर आये थे, उनके द्वारा प्रस्तावित ''गंगा कार्य योजना'' से लोगों के मन में विश्वास जगा था। गंगा भी अपने भविष्य को लेकर आशान्वित हो चली थी। पर दुर्भाग्य यह सपना पूरा न हो सका।

जिस गंगोत्री ग्लेशियर से जीवन दायिनी गंगा नदी निकलती है वह हर साल 37 मीटर की रफ्तार से सिकुड़ती जा रही है और यदि स्थिति यही बनी रही तो गंगा का क्या होगा। गंगा को राष्ट्रीय नदी घोषित कर दिये जाने के बाद सरकार के साथ–साथ समाज, संत, महात्मा और पंडा पुजारियों की जिम्मेदारियाँ भी बढ़ गयी हैं।

लगातार पृथ्वी के संसाधनों के क्षरण और जलवायु परिवर्तन के कारण अनेक दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं। यदि यह सब ऐसे ही चलता रहा तो हमारी पृथ्वी को आग का गोला बनते देर नहीं लगेगी। जीवन के लिए पानी की जरूरत का अहसास प्यास लगने पर ही होता है। इसका कोई विकल्प भी नहीं है। पीने योग्य पानी का लगातार घटना बहुत ही चिंता का विषय है। पूरे विश्व में ऐसी सम्भावना व्यक्त की जा रही

कि 2025 तक विकासशील देशों में पानी की मांग में लगभग 50 प्रतिशत तक और विकसित देशों मे 20 प्रतिशत तक बढ़ोत्तरी हो जायेगी।

हिमालय क्षेत्र में ग्लेशियरों के पिघलने के पुख्ता साक्ष्य न होने के पीछे सीधा सा कारण यह है। कि भारत सरकार ने इंटरनेशनल सेंटर फार माउंटेन डेवलपमेंट (आई सी आई ओडी) और युनाइटेड नेशंस एनवार्यनमेंट (यूएनईपी) और हिमालयी ग्लेशियरो के विस्तृत अध्ययन की मांग बार–बार अस्वीकार की है। इंटरनेशनल पैनल आन क्लाइमेंट चेंज (आईपीसीसी) पहले ही स्वीकार कर चुकी है। कि ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं।और अनुमान लगाया जा रहा है कि हिमालय के 15,000 ग्लेशियर में से दो हजार पिघल चुके हैं। वर्षा 2035 तक सारी गायब हो जायेगी। दुनिया का तापमान 0.74 डिग्री सेल्सियस की गति से बढ़ रहा है। महासागर का जल स्तर चार फीट सालाना बढ़ रहा है। मुंबई, चेन्नई, कोलकाता डूब जायेंगे। जंगल धधकने लगेंगे। सौर ऊर्जा में इजाफा होगा। बढती नमी और बारिश की प्रकृति बदल जाएगी। खेतों में उपज कम हो जायेगी भू–स्खलन, सुनामी, लू डेंगू मस्तिष्क ज्वर और न जाने क्या –क्या होगा।

यूनिवर्सिटी ऑफ स्टाकहोम के वैज्ञानिक हैनिंग रोड का अध्ययन बताता है कि एबीसी एवं ग्लोबल वार्मिंग के कारण भारत और चीन में हृदय एवं श्वसन सम्बन्धी रोग बढ़ने लगेंगें। उनका अनुमान है कि इस प्रकार के रोगों से प्रतिवर्ष भारत और चीन में 3,50,000 लोगों की असमय मृत्यु हो रही है। गंगा, सिन्धु, यांगटिन और पीली नदियों में पानी पहुंचने वाले ग्लेशियर (हिमनद) की सतह पर काजल युक्त हवाएं चलने के कारण ग्लेशियर तो पिघल ही रहे हैं, ये नदियां भी प्रदूषित हो रही हैं। एबीसी का सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव चीन के गुंआग झोब नगर पर पड़ रहा हैं। इसमें 1970 से ही, सर्दी के दिनों मे मिलने वाली रोशनी की मात्रा 20 प्रतिशत तक कम हो गई है। भारत में 1960 से 2000 के बीच प्रकाश की कमी दर प्रति दशक दो प्रतिशत होने से कुल मिलाकर इन चारों दशकों में आठ प्रतिशत हो गई है। 1980 से 2004 तक के 24 वर्षों में यह कमी बढ़कर दो गुना से ज्यादा यानी करीब 16 से 20 प्रतिशत तक (प्रकाश की मात्रा घटकर) पहुंच गई है। एबीसी मे उपस्थित सल्फेट और अन्य कण प्रकाश को परावर्तित करके धरती की सतह को ठंडा करने की क्षमता भी रखते हैं कि इन बादलों को नष्ट्र करने का प्रयास ग्लोबल बार्मिंग को नाटकीय रूप से बढ़ा भी सकता है। वास्तविकता यह है कि इन बादलों का वैश्विक ताप वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) पर पड़ने वाला सर्वाधिक चकराने और परेशान करने वाला है। यू एनईपी वर्ष 2002 से एबीसी का अध्ययन कर रहा है। इसकी ताजा रिपोर्ट को सराहते हुए वैज्ञानिकों ने कहा है कि धरती पर मनुष्यों द्वारा फैलाया जा रहा प्रदूषण वैश्विक तापवृद्धि में ही सहायक नहीं है, बल्कि इस कारण आसमान में बन रहे धुएं के घने बादल समूचे प्राणी जगत के लिए एक विनाशकारी स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं। मानव जीवन को आधारभूत तत्व अन्न, जल, वायु, और प्रकाश पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। इस रिपोर्ट को गंभीर चेतावनी मानकर पर्यावरण के उन्नयन और संरक्षण के लिए हमें कृतसंकल्प होना पड़ेगा।

4 अगस्त 1985 को माउंट एवरेस्ट चोटी के निकट समुद्र तल से करीब 4,385 मीटर ऊँचाई पर स्थित ग्लेशियर से बनी दिगत्शो झील अचानक फट गई। अगले चार घंटो में झील से 80 लाख घन मीटर पानी बह निकला। तेजी से बहती जल धारा के रास्ते में जो भी आया, उसने वर्बाद कर दिया। अगले कुछ घंटो में ही जल प्रवाह में एक छोटे बांध नामचे स्माल हायडल प्रोजेक्ट का ढॉचा, 14 पुल, सड़कें, खेती बाड़ी और बड़ी संख्या में मानव और पशु बह गये। केवल हिमालय में ही नहीं पूरे विश्व में ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं। पूर्वी अफ्रीका के माउंट

क्विलमंजारो पर 2015 तक वर्फ खत्म होने की आशंका है। 1912 से 2000 के बीच इस पर वर्फ की चादर 82 प्रतिशत छोटी हो गई है। 1850 से अल्पाइन ग्लेशियर क्षेत्रफल में 40 प्रतिशत और घनत्व में 50 प्रतिशत पिघल चुके हैं। 1963 से पेरू में ग्लेशियर 155 मीटर प्रतिवर्ष की दर से सिमट रहे हैं। हिमालय के ग्लेशियर बेहद संवेदनशील माने जाते हैं। अपेक्षाकृत निचले भागों में इन ग्लेशियरों पर मानसून के दौरान वर्फ जमती है। जब कि गरमियों में पिघलती है। यूएनईपी का अनुमान है। कि झीलों का फटना एक बड़ी समस्या बनने जा रही है। खास तौर पर दक्षिण अमेरिका, भारत और चीन में।

जल की विकराल समस्या के प्रति यदि हम निरपेक्ष भाव से मनन करें तो दर असल विकास की एकांगी सोच ने जल समस्या को उकसाया है। विकसित राष्ट्र समस्या के प्रति लापरवाह हैं इस स्थिति में भारत को अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए। घरेलू मोर्चे पर भी हमें जल संकट से उबरने के कारगर उपाय करने होंगें। सबसे सरल एवं वर्णीय उपाय है जल की मितव्ययिता तथा जल संचय के पारंपरिक श्रोतों को पुनर्जीवित कर जनसंख्या नियंत्रण के साथ–साथ सामान्य जन की जल संरक्षण में सहभागिता सुनिश्चित करनी होगी ताकि जल युद्ध की आशंका को निर्मूल सिद्ध किया जा सके क्योंकि जीवन युद्ध में नहीं वरन् शांति में सुरक्षित है।

वनों को इसलिए नष्ट किया जा रहा है। क्योंकि मृत पेड़ जिंदा पेड़ों से अधिक कीमती समझे जा रहे हैं। इस सोच को बदलने की आवश्यकता है। वनों का संरक्षण मानव सभ्यता के लिए आवश्यक है। हमें विश्वास है कि दुनिया के प्रमुख देश कोई न कोई ऐसा तंत्र विकसित करने की दिशा में आगे बढ़ेगे जिससे वनों का संतुलन बनाए रखने में मदद मिले। उन 1.4 अरब गरीब लोगों का भी इससे भला होगा जो अपनी अजीविका के लिए इन बनो पर निर्भर हैं। यहॉ एक तथ्य से हम वाकिफ कराना चाहेंगे कि गुयाना ही एक ऐसा देश है। जिससे अपने वनों पर कोई खास आंच नहीं आने दी। वन हमारे जीवन के अपरिहार्य अंग हैं। जिनकी हर कीमत पर रक्षा की जानी चाहिए। वातावरण में व्याप्त कार्बन डाइ आक्साइड सोखने के साथ–साथ ये हमें जीने के लिए आक्सीजन प्रदान करते हैं। वनों के कारण ही वर्षा होती है और लगभग आधी आवादी के लिए ये जीवन यापन का जरिया भी है। यह सही समय है जब हम वनों के प्रति अपने ऋण को चुकाने के लिए आगे बढ़ें यह ऋण भी हमें उनकी रक्षा का संकल्प लेकर ही चुकाना होगा पर्यावरण पद्धति के इस अनिवार्य घटक को हम खाने का खतरा नही उठा सकते है।[1]

25 जनवरी 2008 की राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के प्रारूप में पर्यावरण मंत्रालय ने कहा है कि पर्यावरण बिगड़ने के चार कारण है। ये हैं जनसंख्या वृद्धि, प्रदूषण फैलाने वाली तकनीकी, भोगवाद एवं गरीबी। राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के प्रारूप की बात करें तो यह तकनीकी समस्या भी है और समाधान भी है। हमारे पास साईकिल की तकनीक भी है। और कार की भी। हमनें भोगवाद को अपनाया है इसलिए उस तकनीक का चयन करते हैं जिससे उत्पादन अधिक हो। यदि शहरवासी कार को छोड़ दें तो कार्बन डाई ऑक्साइड सोखने की जरूरत नहीं रहेगी। गॉव के लोग समृद्ध हो जायेंगे जैसे गंगाघाटी के घने जंगलों को काटकर पाटिलीपुत्र के लोग समृद्ध हो गए।

कुछ स्थितियों को छोड़ दें तो आज पर्यावरण नीति की एक मात्र समस्या भोगवाद है। पर्यावरण नीति में इस बात को स्वीकार भी किया गया है। इस में कहा गया है कि गलत उत्पादन एवं उपभोग ही पर्यावरण की समस्या की समस्या मूल कारण हैं। ऐसी आशा की जा रही थी कि नीति में भोगवाद के प्रश्न को उठाया जाएगा। दुर्भाग्य है कि इस मुद्दे पर पर्यावरण नीति पूरी

तरह खामोश है। उपरोक्त वाक्य के आगे कहा गया है। केवल उत्पादन एवं उपभोग पर ध्यान देने से पर्यावरण सुरक्षित नहीं होगा।'' इसके साथ–साथ नीतियों, कानूनों आर्थिक ढांचे आदि में मूलभूत सुधार पर भी ध्यान देना होगा। इस सही बात को कहने के बाद मंत्रालय ने भोगवाद की मूल समस्या को नहीं पकड़ा। बाकी सभी विषयों पर ढ़ेरों सुझाव दे डाले। स्पष्ट है कि पर्यावरण नीति असफल होगी क्योंकि इसमें भोगवाद की मूल समस्या को अनदेखा किया गया है।

पर्यावरण नीति के सिद्धान्तों में कहा गया है कि '' विकास के अधिकार की पूर्ति होनी चाहिए। यह नहीं कहा की पूर्ति होनी चाहिए। यह नहीं कहा गया है कि ''सुख के अधिकार'' की पूर्ति होनी चाहिए। कारण यह है कि नीति बनाने के पीछे भोगवाद एवं अन्धे आर्थिक विकास की मानसिकता काम कर रही है।

मनुष्य ने शायद पर्यावरण को सुख की एक विशेष तकनीक से जोड़ा है। लक्ष्मी जी का वाहन उल्लू बताया गया, गणेश जी का वाहन चूहा और दुर्गा जी का वाहन शेर। गाय को माता कहा गया। इससे एक तरफ व्यक्ति के मन में इन जीवों के प्रति आदर एवं करूणा बैठ गई एवं दूसरी ओर मनुष्य का ध्यान भौतिक संसार से परे यानि भोगवाद से हटाकर देवी–देवताओं पर केन्द्रित किया गया। इससे मनुष्य का ध्यान इन्द्रिय सुख एवं भोगवाद से हटकर पर्यावरण एवं आत्मीय सुख से जुड़ा। इसी क्रम में मनुष्य ने अनेक परम्परायें बनाई जिनसे वनस्पतियों का संरक्षण होता है। आंवला नवमी के दिन आंवले के वृक्ष की पूजा करना उसके नीचे बैठकर भोजन करना, विशेष दिनों पर तुलसी या नीम का विवाह करना, वृहस्पति ग्रह की शांति के लिए केले की पूजा करना, शनि की शांति के लिए पीपल की पूजा करना आदि उदाहरण हमारे समक्ष हैं। इस सबका पर्यावरण नीति में समावेश करना चाहिए।

भारत सरकार की वन नीति के अनुसार देश के कुल भौगोलिक भू–भाग का 33 प्रतिशत वनाच्छादित होना चाहिए। भारतीय वन सर्वेक्षण के आंकड़ों के अनुसार 2003 में देश का करीब 19. 27 प्रतिशत भाग वनाच्छादित था। इसमें केवल 11.7 प्रतिशत पर सघन वन हैं। केन्द्रीय सरकार का लक्ष्य है कि 2007 तक वनाच्छादित क्षेत्र 25 प्रतिशत एवं 2012 तक 33 प्रतिशत हो जाना चाहिए। यह लक्ष्य हासिल करना सहज नहीं है। इसके लिए 8000 करोड़ रूपये का निवेश प्रस्तावित हैं। और केन्द्र की योजना है कि इस मुहिम में निजी क्षेत्र के साथ ही जन भागीदारी सुनिश्चित की जाए। 2003 में भारत में वनों की स्थिति के बारे में केन्द्रीय वन मंगलय की ओर से जारी सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार अब तक देश में 26 हजार वर्ग किलोमीटर सघन वनों का सफाया हो चुका है। किसी वक्त तीन लाख नब्बे हजार पांच सौ चौसठ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र मे सघन वन था। और दो लाख सत्तासी हजार वर्ग किलोमीटर में खुले वन थे।

यदि हम केन्द्रीय वन मंत्रालय के आंकड़ों पर गौर करें को सबसे अधिक वन भाग 34 प्रतिशत कर्नाटक में हैं। तदुपरान्त 25 प्रतिशत जम्मू–कश्मीर, 24 प्रतिशत असम, 22.7 प्रतिशत केरल, 22.5 प्रतिशत बिहार–, झारखण्ड, 11.8 प्रतिशत महाराष्ट्र, 11.5 प्रतिशत उत्तर प्रदेश, 3.8 प्रतिशत राजस्थान और 2.5 प्रतिशत पंजाब का वन क्षेत्र हैं। यह चिंताजनक है कि देश मे वन घटे हैं। ऐसी स्थिति में यदि वन नहीं रहेंगें तो वायुमंडल प्रदूषित होगा, कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाएगी, तापमान बढेगा, वर्षा तंत्र ऊपर उठेगा और कई तटवर्तीय इलाके डूब जाएंगे। वनों का विनाश मानव लिप्सा के कारण ही हो रहा है।

सहायक ग्रथ सूची

- दैनिक जागरण ,26 अक्टूबर 2009
- दैनिक जागरण, 6 दिसंबर 2009
- अमर उजाला ,12 दिसंबर 2009
- दैनिक जागरण, 6 नवंबर 2009
- दैनिक जागरण ,26 दिसंबर 2009
- अखण्ड ज्योति, दिसंबर 2007 पेज नं0 31, 32
- अखण्ड ज्योति, दिस0 2007– पेज 31
- अखण्ड ज्योति, दिस0 2007–32)
- अखण्ड ज्योति, दिस02007–32
- मौर्य एस0डी0 (2006) : संसाधन एवं पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- नेगी,पी0 एस0 (200) : पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेषन, मेरठ।
- डब्लू सी0वाल्टन (1970): ग्राउण्ड वाटर रिसोर्स इवेल्यूषन, एम0पी0 ग्रोव हील, न्यूयार्क, पृष्ठ 664।
- सिंह डा0 काषीनाथ सिंह, डा0 जगदीष सिंह (1997): आर्थिक भूगोल के मूल तत्व।
- मिश्र,डा0डी0के (2004) :जनसंख्या, पर्यारण एवं विकास,ए0पी0एच0 पब्लिषिंग कार्पोरेषन, नई दिल्ली।
- सिंह, रवीन्द्र (2001) पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

Copyright © 2014, Dr. Virendra Singh Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.